LITERATURE AND BOOKS

दादी-अम्मा – कृष्णा सोबती

By **Meri Baatein** — May 16, 2021

-

कृष्णा सोबती की लिखी कहानी 'दादी-अम्मा' एक बेहद ही मार्मिक कहानी है, जिसके किरदार और बातें शायद हममें से सभी अपने आसपास देख लेते हैं, या तो कहें कि अपने परिवार में ही कहीं न कहीं इसकी जलक पा जाते हैं. घर में जब नयी बहु आती है, कैसे उसके कर्त्तव्य और व्यवहार में बदलाव होते हैं, ये कहानी दरअसल उसी को दर्शाती है. एक बहु कैसे सास बनती है और फिर दादी सास. ये इस कहानी के जरिये जानें –

बहार फिर आ गई। वसन्त की हल्की हवाएँ पतझर के फीके ओठों को चुपके से चूम गईं। जाड़े ने सिकुड़े-सिकुड़े पंख फड़फड़ाए और सर्दी दूर हो गई। आँगन में पीपल के पेड़ पर नए पात खिल-खिल आए। परिवार के हँसी-खुशी में तैरते दिन-रात मुस्कुरा उठे। भरा-भराया घर। सँभली-सँवरी-सी सुन्दर सलोनी बहुएँ। चंचलता से खिलखिलाती बेटियाँ। मजबूत बाँहोंवाले युवा बेटे। घर की मालकिन मेहराँ अपने हरे-भरे परिवार को देखती है और सुख में भीग जाती हैं यह पाँचों बच्चे उसकी उमर-भर की कमाई हैं।

उसे वे दिन नहीं भूलते जब ब्याह के बाद छह वर्षों तक उसकी गोद नहीं भरी थी। उठते-बैठते सास की गंभीर कठोर दृष्टि उसकी समूची देह को टटोल जाती। रात को तकिए पर सिर डाले-डाले वह सोचती कि पति के प्यार की छाया में लिपटे-लिपटे भी उसमें कुछ व्यर्थ हो गया है, असमर्थ हो गया है। कभी सकुचाती-सी ससुर के पास से निकलती तो लगता कि इस घर की देहरी पर पहली बार पाँव रखने पर जो आशीष उसे मिली थी, वह उसे सार्थक नहीं कर पाई। वह ससुर के चरणों में झुकी थी और उन्होंने सिर पर हाथ रखकर कहा था, "बहूरानी, फूलो-फलो।" कभी दर्पण के सामने खड़ी-खड़ी वह बाँहें फैलाकर देखती-क्या इन बाँहों में अपने उपजे किसी नन्हे-मुन्ने को भर लेने की क्षमता नहीं!

छह वर्षों की लम्बी प्रतीक्षा के बाद सर्दियों की एक लम्बी रात में करवट बदलते-बदलते मेहराँ को पहली बार लगा था कि जैसे नर्म-नर्म लिहाफ़ में वह सिकुड़ी पड़ी है, वैसे ही उसमें, उसके तन-मन-प्राण के नीचे गहरे कोई धड़कन उससे लिपटी आ रही है। उसने अँधियारे में एक बार सोए हुए पति की ओर देखा था और अपने से लजाकर अपने हाथों से आँखें ढाँप ली

थीं। बन्द पलकों के अन्दर से दो चमकती आँखें थीं, दो नन्हें-नन्हे हाथ थे, दो पाँव थे। सुबह उठकर किसी मीठी शिथिलता में घिरे-घिरे अँगड़ाई ली थी। आज उसका मन भरा है। मन भरा है। सास ने भाँपकर प्यार बरसाया थाः

"बहू, अपने को थकाओ मत, जो सहज-सहज कर सको, करो। बाकी मैं सँभाल लूँगी।"

वह कृतज्ञता से मुस्कुरा दी थी। काम पर जाते पति को देखकर मन में आया था कि कहे- 'अब तुम मुझसे अलग बाहर ही नहीं, मेरे अंदर भी हो।'

दिन में सास आ बैठी; माथा सहलाते-सहलाते बोली, "बहूरानी, भगवान मेरे बच्चे को तुम-सा रूप दे और मेरे बेटे-सा जिगरा।"

बहू की पलकें झुक आईं।

"बेटी, उस मालिक का नाम लो, जिसने बीज डाला है। वह फल भी देगा।"

मेहराँ को माँ का घर याद हो आया। पास-पड़ोस की स्त्रियों के बीच माँ भाभी का हाथ आगे कर कह रही है, "बाबा, यह बताओ, मेरी बहू के भाग्य में कितने फल हैं?"

पास खड़ी मेहराँ समझ नहीं पाई थी। हाथ में फल?

"माँ, हाथ में फल कब होते हैं? फल किसे कहती हो माँ?"

माँ लड़की की बात सुनकर पहले हँसी, फिर गुस्सा होकर बोली, "दूर हो मेहराँ, जा, बच्चों के संग खेल!"

उस दिन मेहराँ का छोटा सा मन यह समझ नहीं पाया था, पर आज तो सास की बात वह समझ ही नहीं, बूझ भी रही थी। बहू के हाथ में फल होते हैं, बहू के भाग्य में फल होते हैं और परिवार की बेल बढ़ती है। मेहराँ की गोद से इस परिवार की बेल बढ़ी है। आज घर में तीन बेटे हैं, उनकी बहुएँ हैं। ब्याह देने योग्य दो बेटियाँ हैं। हल्के-हल्के कपड़ों में लिपटी उसकी बहुएँ जब उसके सामने झुकती हैं तो क्षण-भर के लिए मेहराँ के मस्तक पर घर की स्वामिनी होने का अभिमान उभर आता है। वह बैठे-बैठे उन्हें आशीष देती है और मुस्कुराती है। ऐसे ही, बिल्कुल ऐसे ही वह भी कभी सास के सामने झुकती थी। आज तो वह तीखी , निगाहवाली मालकिन, बच्चों की दादी-अम्मा बनकर रह गई है। पिछवाड़े के कमरे में से जब दादा के साथ बोलती हुई अम्मा की आवाज़ आती है तो पोते क्षण-भर ठिठककर अनसुनी कर देते हैं। बहुएँ एक-दूसरे को देखकर मन-ही-मन हँसती हैं। लाड़ली बेटियाँ सिर हिला-हिलाकर खिलखिलाती हुई कहती हैं, "दादी-अम्मा बूढ़ी हो आई, पर दादा से झगड़ना नहीं छोड़ा।"

मेहराँ भी कभी-कभी पति के निकट खड़ी हो कह देती है, "अम्मा नाहक बापू के पीछे पड़ी रहती हैं। बहू-बेटियोंवाला घर है, क्या यह अच्छा लगता है?"

पति एक बार पढ़ते-पढ़ते आँखें ऊपर उठाते हैं। पल-भर पत्नी की ओर देख दोबारा पन्ने पर दृष्टि गड़ा देते हैं। माँ की बात पर पति की मौन-गंभीर मुद्रा मेहराँ को नहीं भाती। लेकिन प्रयत्न करने पर भी वह कभी पति को कुछ कह देने तक खींच नहीं पाई। पत्नी पर एक उड़ती निगाह, और बस। किसी को आज्ञा देती मेहराँ की आवाज़ सुनकर कभी उन्हें भ्रम हो आता है। वह मेहराँ का नहीं अम्मा का ही रोबीला स्वर है। उनके होश में अम्मा ने कभी ढीलापन जाना ही नहीं। याद नहीं आता

कि कभी माँ के कहने को वह जाने-अनजाने टाल सके हों। और अब जब माँ की बात पर बेटियों को हँसते सुनते हैं तो विश्वास नहीं आता। क्या सचमुच माँ आज ऐसी बातें किया करती हैं कि जिन पर बच्चे हँस सकें।

और अम्मा तो सचमुच उठते-बैठते बोलती है, झगड़ती है, झुकी कमर पर हाथ रखकर वह चारपाई से उठकर बाहर आती है तो जो सामने हो उस पर बरसने लगती है।

बड़ा पोता काम पर जा रहा है। दादी-अम्मा पास आ खड़ी हुई। एक बार ऊपर-तले देखा और बोली, "काम पर जा रहे हो बेटे, कभी दादा की ओर भी देख लिया करो, कब से उनका जी अच्छा नहीं। जिसके घर में भगवान के दिए बेटे-पोते हों, वह इस तरह बिना दवा-दारू पड़े रहते हैं।"

बेटा दादी-अम्मा की नज़र बचाता है। दादा की ख़बर क्या घर-भर में उसे ही रखनी है! छोड़ो, कुछ-न-कुछ कहती ही जाएँगी अम्मा, मुझे देर हो रही है। लेकिन दादी-अम्मा जैसे राह रोक लेती है, "अरे बेटा, कुछ तो लिहाज करो,बहू-बेटे वाले हुए, मेरी बात तुम्हें अच्छी नहीं लगती!"

मेहराँ मँझली बहू से कुछ कहने जा रही थी, लौटती हुई बोली, "अम्मा कुछ तो सोचो, लड़का बहू-बेटोंवाला है। तो क्या उस पर तुम इस तरह बरसती रहोगी?"

दादी-अम्मा ने अपनी पुरानी निगाह से मेहराँ को देखा और जलकर कहा, "क्यों नहीं बहू, अब तो बेटों को कुछ कहने के लिए तुमसे पूछना होगा! यह बेटे तुम्हारे हैं, घर-बार तुम्हारा है, हुक्म हासिल तुम्हारा है।"

मेहराँ पर इस सबका कोई असर नहीं हुआ। सास को वहीं खड़ा छोड़ वह बहू के पास चली गई। दादी-अम्मा ने अपनी पुरानी आँखों से बहू की वह रोबीली चाल देखी और ऊँचे स्वर में बोली, "बहूरानी, इस घर में अब मेरा इतना-सा मान रह गया है! तुम्हें इतना घमंड...!"

मेहराँ को सास के पास लौटने की इच्छा नहीं थी, पर घमंड की बात सुनकर लौट आई।

"मान की बात करती हो अम्मा? तो आए दिन छोटी-छोटी बात लेकर जलने-कलपने से किसी का मान नहीं रहता।"

इस उलटी आवाज़ ने दादी-अम्मा को और जला दिया। हाथ हिला-हिलाकर क्रोध में रुक-रुककर बोली, "बहू, यह सब तुम्हारे अपने सामने आएगा! तुमने जो मेरा जीना दूभर कर दिया है, तुम्हारी तीनों बहुएँ भी तुम्हें इसी तरह समझेंगी। क्यों नहीं, जरूर समझेंगी।"

कहती-कहती दादी-अम्मा झुकी कमर से पग उठाती अपने कमरे की ओर चल दी। राह में बेटे के कमरे का द्वार खुला देखा तो बोली, "जिस बेटे को मैंने अपना दूध पिलाकर पाला, आज उसे देखे मुझे महीनों बीत जाते हैं, उससे इतना नहीं हो पाता कि बूढ़ी अम्मा की सुधि ले।"

मेहराँ मँझली बहू को घर के काम-धन्धे के लिए आदेश दे रही थी। पर कान इधर ही थे। 'बहुएँ उसे भी समझेंगी' इस अभिशाप को वह कड़वा घूँट समझकर पी गई थी, पर पति के लिए सास का यह उलाहना सुनकर न रहा गया। दूर से ही बोली, "अम्मा, मेरी बात छोड़ो, पराए घर की हूँ, पर जिस बेटे को घर-भर में सबसे अधिक तुम्हारा ध्यान है, उसके लिए यह कहते तुम्हें झिझक नहीं आती? फिर कौन माँ है, जो बच्चों को पालती-पोसती नहीं!"

अम्मा ने अपनी झुर्रियों-पड़ी गर्दन पीछे की। माथे पर पड़े तेवरों में इस बार क्रोध नहीं भर्त्सना थी। चेहरे पर वही पुरानी उपेक्षा लौट आई, "बहू, किससे क्या कहा जाता है, यह तुम बड़े समधियों से माथा लगा सब कुछ भूल गई हो। माँ अपने बेटे से क्या कहे, यह भी क्या अब मुझे बेटे की बहू से ही सीखना पड़ेगा? सच कहती हो बहू, सभी माएँ बच्चों को पालती हैं। मैंने कोई अनोखा बेटा नहीं पाला था, बहू! फिर तुम्हें तो मैं पराई बेटी करके ही मानती रही हूँ। तुमने बच्चे आप जने, आप ही वे दिन काटे, आप ही बीमारियाँ झेलीं!"

मेहराँ ने खड़े-खड़े चाहा कि सास यह कुछ कहकर और कहतीं। वह इतनी दूर नहीं उतरी कि इन बातों का जवाब दे। चुपचाप पति के कमरे में जाकर इधर-उधर बिखरे कपड़े सहेजने लगी। दादी-अम्मा कड़वे मन से अपनी चारपाई पर जा पड़ी। बुढ़ापे की उम्र भी कैसी होती है! जीते-जी मन से संग टूट जाता है। कोई पूछता नहीं, जानता नहीं।

घर के पिछवाड़े जिसे वह अपनी चलती उम्र में कोठरी कहा करती थी, उसी में आज वह अपने पति के साथ रहती है। एक कोने में उसकी चारपाई और दूसरे कोने में पति की, जिसके साथ उसने अनगिनत बहारें और पतझर गुज़ार दिए हैं। कभी घंटों वे चुपचाप अपनी-अपनी जगह पर पड़े रहते हैं। दादी-अम्मा बीच-बीच में करवट बदलते हुए लम्बी साँस लेती है। कभी पतली नींद में पड़ी-पड़ी वर्षों पहले की कोई भूली-बिसरी बात करती है, पर बच्चों के दादा उसे सुनते नहीं। दूर कमरों में बहुओं की मीठी दबी-दबी हँसी वैसे ही चलती रहती है। बेटियाँ खुले-खुले खिलखिलाती हैं। बेटों के कदमों की भारी आवाज़ कमरे तक आकर रह जाती है और दादी-अम्मा और पास पड़े दादा में जैसे बीत गए वर्षों की दूरी झूलती रहती है।

आज दादा जब घंटों धूप में बैठकर अंदर आए तो अम्मा लेटी नहीं, चारपाई की बाँह पर बैठी थी। गाढ़े की धोती से पूरा तन नहीं ढका था। पल्ला कंधे से गिरकर एक ओर पड़ा था। वक्ष खुला था। आज वक्ष में ढकने को रह भी क्या गया था? गले और गर्दन की झुर्रियाँ एक जगह आकर इकट्ठी हो गई थीं। पुरानी छाती पर कई तिल चमक रहे थे। सिर के बाल उदासीनता से माथे के ऊपर सटे थे।

दादा ने देखकर भी नहीं देखा। अपने-सा पुराना कोट उतारकर खूँटी पर लटकाया और चारपाई पर लेट गए। दादी-अम्मा देर तक बिना हिले-डुले वैसी-की-वैसी बैठी रही। सीढ़ियों पर छोटे बेटे के पाँवों के उतावली-सी आहट हुई। उमंग की छोटी सी गुनगुनाहट द्वार तक आकर लौट गई। ब्याह के बाद के वे दिन, मीठे मधुर दिन। पाँव बार-बार घर की ओर लौटते हैं। प्यार-सी बहू आँखों में प्यार भर-भरकर देखती है, लजाती है, सकुचाती है और पति की बाँहों में लिपट जाती है। अभी कुछ महीने हुए, यही छोटा बेटा माथे पर फूलों का सेहरा लगाकर ब्याहने गया था। बाजे-गाजे के साथ जब लौटा तो संग में दुलहिन थी।

सबके साथ दादी-अम्मा ने भी पतोहू का माथा चूमकर उसे हाथ का कंगन दिया था। पतोहू ने झुककर दादी-अम्मा के पाँव छुए थे और अम्मा लेन-देन पर मेहराँ से लड़ाई -झगड़े की बात भूलकर कई क्षण दुलहिन के मुखड़े की ओर देखती रही थी। छोटी बेटी ने चंचलता से परिहास कर कहा था, "दादी-अम्मा, सच कहो भैया की दुलहिन तुम्हें पसंद आई? क्या तुम्हारे दिनों में भी शादी-ब्याह में ऐसे ही कपड़े पहने जाते थे?"

कहकर छोटी बेटी ने दादी के उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की। हँसी-हँसी में किसी और से उलझ पड़ी।

मेहराँ बहू-बेटे को घेरकर अंदर ले चली। दादी-अम्मा भटकी-भटकी दृष्टि से वे अनगिनत चेहरे देखती रही। कोई पास-पड़ोसिन उसे बधाई दे रही थी, "बधाई हो अम्मा, सोने-सी बहू आई है शुक्र है उस मालिक का, तुमने अपने हाथों छोटे पोते का भी काज सँवारा।"

अम्मा ने सिर हिलाया। सचमुच आज उस-जैसा कौन है! पोतों की उसे हौंस थी, आज पूरी हुई। पर काज सँवारने में उसने क्या किया, किसी ने कुछ पूछा नहीं तो करती क्या? समधियों से बातचीत, लेन-देन, दुलहिन के कपड़े-गहने, यह सब मेहराँ के अभ्यस्त हाथों से होता रहा है। घर में पहले दो ब्याह हो जाने पर अम्मा से सलाह-सम्मति करना भी आवश्यक नहीं रह गया। केवल कभी-कभी कोई नया गहना गढ़वाने पर या नया जोड़ा बनवाने पर मेहराँ उसे सास को दिखा देती रही है।

बड़ी बेटी देखकर कहती है, "माँ! अम्मा को दिखाने जाती हो, वह तो कहेंगी, 'यह गले का गहना हाथ लगाते उड़ता है। कोई भारी ठोस कंठा बनवाओ, सिर की सिंगार-पट्टी बनवाओ। मेरे अपने ब्याह में मायके से पचास तोले का रानीहार चढ़ा था। तुम्हें याद नहीं, तुम्हारे ससुर को कहकर उसी के भारी जड़ाऊ कंगन बनवाए थे तुम्हारे ब्याह में!'"

मेहराँ बेटी की ओर लाड़ से देखती है। लड़की झूठ नहीं कहती। बड़े बेटों की सगाई में, ब्याह में, अम्मा बीसियों बार यह दोहरा चुकी हैं। अम्मा को कौन समझाए कि ये पुरानी बातें पुराने दिनों के साथ गईं!

अम्मा नाते-रिश्तों की भीड़ में बैठी-बैठी ऊँघती रही। एकाएक आँख खुली तो नीचे लटकते पल्ले से सिर ढक लिया। एक बेख़बरी कि उघाड़े सिर बैठी रही। पर दादी-अम्मा को इस तरह अपने को सँभालते किसी ने देखा तक नहीं। अम्मा की ओर देखने की सुधि भी किसे है?

बहू को नया जोड़ा पहनाया जा रहा है। रोशनी में दुलहिन शरमा रही है। ननदें हास-परिहास कर रही हैं। मेहराँ घर में तीसरी बहू को देखकर मन-ही-मन सोच रही है कि बस, अब दोनों बेटियों को ठिकाने लगा दे तो सुर्खरू हो।

बहू का श्रृंगार देख दादी-अम्मा बीच-बीच में कुछ कहती है, "लड़कियों में यह कैसा चलन है आजकल? बहू के हाथों और पैरों में मेहँदी नहीं रचाई। यही तो पहला सगुन है।"

दादी-अम्मा की इस बात को जैसे किसी ने सुना नहीं। साज-श्रृंगार में चमकती बहू को घेरकर मेहराँ दूल्हे के कमरे की ओर ले चली। नाते-रिश्ते की युवतियाँ मुस्कुरा-मुस्कुराकर शरमाने लगीं, दूल्हे के मित्र-भाई आँखों में नहीं, बाँहों में नए-नए चित्र भरने लगे और मेहराँ बहू पर आशीर्वाद बरसाकर लौटी तो देहरी के संग लगी दादी-अम्मा को देखकर स्नेह जताकर बोली, "आओ अम्मा, शुक्र है भगवान का, आज ऐसी मीठी घड़ी आई।"

अम्मा सिर हिलाती-हिलाती मेहराँ के साथ हो ली, पर आँखें जैसे वर्षों पीछे घूम गईं। ऐसे ही एक दिन वह मेहराँ को अपने बेटे के पास छोड़ आई थी। वह अंदर जाती थी, बाहर आती थी। वह इस घर की मालकिन थी। पीछे, और पीछे – बाजे-गाजे के साथ उसका अपना डोला इस घर के सामने आ खड़ा हुआ। गहनों की छनकार करती वह नीचे उतरी। घूँघट की ओट से मुस्कुराती, नीचे झुकती और पति की बूढ़ी फूफी से आशीर्वाद पाती।

दादी-अम्मा को ऊँघते देख बड़ी बेटी हिलाकर कहने लगी, "उठो अम्मा,जाकर सो रहो, यहाँ तो अभी देर तक हँसी-ठट्ठा होता रहेगा।"

दादी-अम्मा झँपी-झँपी आँखों से पोती की ओर देखती है और झुकी कमर पर हाथ रखकर अपने कमरे की ओर लौट जाती है।

उस दिन अपनी चारपाई पर लेटकर दादी-अम्मा सोई नहीं। आँखों में न ऊँघ थी, न नींद। एक दिन वह भी दुलहिन बनी थी। बूढ़ी फूफी ने सजाकर उसे भी पति के पास भेजा था। तब क्या उसने यह कोठरी देखी थी? ब्याह के बाद वर्षों तक उसने जैसे यह जाना ही नहीं कि फूफी दिन-भर काम करने के बाद रात को यहाँ सोती है। आँखें मुँद जाने से पहले जब फूफी बीमार हुई तो दादी-अम्मा ने कुलीन बहू की तरह उसकी सेवा करते-करते पहली बार यह जाना था कि घर में इतने

कमरे होते हुए भी फूफी इस पिछवाड़े में अपने अन्तिम दिन-बरस काट गई है। पर यह देखकर, जानकर उसे आश्चर्य नहीं हुआ था।

घर के पिछवाड़े में पड़ी फूफी की देह छाँहदार पेड़ के पुराने तने की तरह लगती थी, जिसके पत्तों की छाँह उससे अलग, उससे परे, घर-भर पर फैली हुई थी।

आज तो दादी-अम्मा स्वयं फूफी बनकर इस कोठरी में पड़ी है। ब्याह के कोलाहल से निकलकर जब दादा थककर अपनी चारपाई पर लेटे तो एक लम्बा चैन का-सा साँस लेकर बोले, "क्या सो गई हो? इस बार की रौनक, लेन-देन तो मँझले और बड़े बेटे के ब्याह को भी पार कर गई। समधियों का बड़ा घर ठहरा!"

दादी-अम्मा लेन-देन की बात पर कुछ कहना चाहते हुए भी नहीं बोली। चुपचाप पड़ी रही। दादा सो गए, आवाज़ें धीमी हो गईं। बरामदे में मेहराँ का रोबीला स्वर नौकर-चाकरों को सुबह के लिए आज्ञाएँ देकर मौन हो गया। दादी-अम्मा पड़ी रही और पतली नींद से घिरी आँखों से नए-पुराने चित्र देखती रही। एकाएक करवट लेते-लेते दो-चार क़दम उठाए और दादा की चारपाई के पास आ खड़ी हुई। झुककर कई क्षण तक दादा की ओर देखती रही। दादा नींद में बेख़बर थे और दादी जैसे कोई पुरानी पहचान कर रही हो। खड़े-खड़े कितने पल बीत गए! क्या दादी ने दादा को पहचाना नहीं? चेहरा उसके पति का है पर दादी तो इस चेहरे को नहीं, चेहरे के नीचे पति को देखना चाहती है। उसे बिछुड़ गए वर्षों में से वापस लौटा लेना चाहती है।

सिरहाने पर पड़ा दादा का सिर बिल्कुल सफ़ेद था। बन्द आँखों से लगी झुर्रियाँ-ही-झुर्रियाँ थीं। एक सूखी बाँह कम्बल पर सिकुड़ी-सी पड़ी थी। यह नहीं....यह तो नहीं.... दादी-अम्मा जैसे सोते-सोते जाग पड़ी थी, वैसे ही इस भूले-भटके भँवर में ऊपर-नीचे होती चारपाई पर जा पड़ी।

उस दिन सुबह उठकर जब दादी-अम्मा ने दादा को बाहर जाते देखा तो लगा कि रात-भर की भटकी-भटकी तस्वीरों में से कोई भी तस्वीर उसकी नहीं थी। वह इस सूखी देह और झुके कन्धे में से किसे ढूँढ़ रही थी? दादी-अम्मा चारपाई की बाँहों से उठी और लेट गई। अब तो इतनी-सी दिनचर्या शेष रह गई है। बीच-बीच में कभी उठकर बहुओं के कमरों की ओर जाती है तो लड़-झगड़कर लौट आती हैं कैसे हैं उसके पोते जो उम्र के रंग में किसी की बात नहीं सोचते? किसी की ओर नहीं देखते? बहू और बेटा, उन्हें भी कहाँ फ़ुरसत है?

मेहराँ तो कुछ-न-कुछ कहकर चोट करने से भी नहीं चूकती। लड़ने को तो दादी भी कम नहीं, पर अब तीखा-तेज़ बोल लेने पर जैसे वह थककर चूर-चूर हो जाती है। बोलती है, बोले बिना रह नहीं पाती, पर बाद में घंटों बैठी सोचती रहती है कि वह क्यों उनसे माथा लगाती है, जिन्हें उसकी परवा नहीं। मेहराँ की तो अब चाल-ढाल ही बदल गई है। अब वह उसकी बहू नहीं, तीन बहुओं की सास है। ठहरी हुई गंभीरता से घर का शासन चलाती है। दादी-अम्मा का बेटा अब अधिक दौड़-धूप नहीं करता। देखरेख से अधिक अब बहुओं द्वारा ससुर का आदर-मान ही अधिक होता है। कभी अंदर-बाहर जाते अम्मा मिल जाती है तो झुककर बेटा माँ को प्रणाम अवश्य करता है। दादी-अम्मा गर्दन हिलाती-हिलाती आशीर्वाद देती है, "जीयो बेटा, जीयो।"

कभी मेहराँ की जली-कटी बातें सोच बेटे पर क्रोध और अभिमान करने को मन होता है, पर बेटे को पास देखकर दादी-अम्मा सब भूल जाती है। ममता-भरी पुरानी आँखों से निहारकर बार-बार आशीर्वाद बरसाती चली जाती है, "सुख पाओ, भगवान बड़ी उम्र दे...." कितना गंभीर और शीलवान है उसका बेटा! है तो उसका न? पोतों को ही देखो, कभी झुककर दादा के पाँव तक नहीं छूते। आखिर माँ का असर कैसे जाएगा? इन दिनों बहू की बात सोचते ही दादी-अम्मा को लगता है कि अब मेहराँ उसके बेटे में नहीं अपने बेटों में लगी रहती है। दादी-अम्मा को वे दिन भूल जाते हैं जब बेटे के ब्याह के

बाद बहू-बेटे के लाड़-चाव में उसे पति के खाने-पीने की सुधि तक न रहती थी और जब लाख-लाख शुक्र करने पर पहली बार मेहराँ की गोद भरनेवाली थी तो दादी-अम्मा ने आकर दादा से कहा था, "बहू के लिए अब यह कमरा खाली करना होगा। हम लोग फूफी के कमरे में जा रहेंगे।"

दादा ने एक भरपूर नज़रों से दादी-अम्मा की ओर देखा था, जैसे वह बीत गए वर्षों को अपनी दृष्टि से टटोलना चाहते हों। फिर सिर पर हाथ फेरते-फेरते कहा था, "क्या बेटे वाला कमरा बहू के लिए ठीक नहीं? नाहक क्यों यह सबकुछ उलटा-सीधा करवाती हो?"

दादी-अम्मा ने हाथ हिलाकर कहा, "ओह हो, तुम समझोगे भी! बेटे के कमरे में बहू को रखूँगी तो बेटा कहाँ जाएगा? उलटे-सीधे की फिक्र तुम क्यों करते हो, मैं सब ठीक कर लूँगी।"

और पत्नी के चले जाने पर दादा बहुत देर बैठे-बैठे भारी मन से सोचते रहे कि जिन वर्षों का बीतना उन्होंने आज तक नहीं जाना, उन्हीं पर पत्नी की आशा विराम बनकर आज खड़ी हो गई है। आज सचमुच ही उसे इस उलटफेर की परवा नहीं।

इस कमरे में बड़ी फूफी उनकी दुलहिन को छोड़ गई थी। उस कमरे को छोड़कर आज वह फूफी के कमरे में जा रहे हैं। क्षण-भर के लिए, केवल क्षण-भर के लिए उन्हें बेटे से ईष्र्या हुई और उदासीनता में बदल गई और पहली रात जब वह फूफी के कमरे में सोए तो देर गए तक भी पत्नी बहू के पास से नहीं लौटी थी। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद उनकी पलकें झँपी तो उन्हें लगा कि उनके पास पत्नी का नहीं...फूफी का हाथ है। दूसरे दिन मेहराँ की गोद भरी थी, बेटा हुआ था। घर की मालकिन पति की बात जानने के लिए बहुत अधिक व्यस्त थी।

कुछ दिन से दादी-अम्मा का जी अच्छा नहीं। दादा देखते हैं, पर बुढ़ापे की बीमारी से कोई दूसरी बीमारी बड़ी नहीं होती। दादी-अम्मा बार-बार करवट बदलती है और फिर कुछ-कुछ देर के लिए हाँफकर पड़ी रह जाती है। दो-एक दिन से वह रसोईघर की ओर भी नहीं आई, जहाँ मेहराँ का आधिपत्य रहते हुए भी वह कुछ-न-कुछ नौकरों को सुनाने में चूकती नहीं है। आज दादी को न देखकर छोटी बेटी हँसकर मँझली भाभी से बोली, "भाभी, दादी-अम्मा के पास अब शायद कोई लड़ने-झगड़ने की बात नहीं रह गई, नहीं तो अब तक कई बार चक्कर लगातीं।"

दोपहर को नौकर जब अम्मा के यहाँ से अनछुई थाली उठा लाया तो मेहराँ का माथा ठनका। अम्मा के पास जाकर बोली, "अम्मा, कुछ खा लिया होता, क्या जी अच्छा नहीं?"

एकाएक अम्मा कुछ बोली नहीं। क्षण-भर रुककर आँखें खोली और मेहराँ को देखती रह गई।

"खाने को मन न हो तो अम्मा दूध ही पी लो।"

अम्मा ने 'हाँ' – 'ना' कुछ नहीं की। न पलकें ही झपकीं। इस दृष्टि से मेहराँ बहुत वर्षों के बाद आज फिर डरी। इनमें न क्रोध था, न सास की तरेर थी, न मनमुटाव था। एक लम्बा गहरा उलाहना-पहचानते मेहराँ को देर नहीं लगी।

डरते-डरते सास के माथे को छुआ। ठंडे पसीने से भीगा था। पास बैठकर धीरे से स्नेह-भरे स्वर में बोली, "अम्मा, जो कहो, बना लाती हूँ।"

अम्मा ने सिरहाने पर पड़े-पड़े सिर हिलाया – नहीं, कुछ नहीं- और बहू के हाथ से अपना हाथ खींच लिया।

मेहराँ पल-भर कुछ सोचती रही और बिना आहट किए बाहर हो गई। बड़ी बहू के पास जाकर चिंतित स्वर में बोली, "बहू, अम्मा कुछ अधिक बीमार लगती हैं, तुम जाकर पास बैठो तो मैं कुछ बना लाऊँ।"

बहू ने सास की आवाज़ में आज पहली बार दादी-अम्मा के लिए घबराहट देखी। दबे पाँव जाकर अम्मा के पास बैठ हाथ-पाँव दबाने लगी। अम्मा ने इस बार हाथ नहीं खींचे। ढीली सी लेटी रही।

मेहराँ ने रसोईघर में जाकर दूध गर्म किया। औटाने लगी तो एकाएक हाथ अटक गया-क्या अम्मा के लिए यह अन्तिम बार दूध लिये जा रही है?

दादी-अम्मा ने बेखबरी में दो-चार घूँट दूध पीकर छोड़ दिया। चारपाई पर पड़ी अम्मा चारपाई के साथ लगी दीखती थीं। कमरे में कुछ अधिक सामान नहीं था। सामने के कोने में दादा का बिछौना बिछा था। शाम को दादा आए तो अम्मा के पास बहू और पतोहू को बैठे देख पूछा,"अम्मा तुम्हारी रूठकर लेटी है या....?"

मेहराँ ने अम्मा की बाँह आगे कर दी। दादा ने छूकर हौले से कहा, "जाओ बहू, बेटा आता ही होगा। उसे डॉक्टर को लिवाने भेज देना।"

मेहराँ सुसर के शब्दों को गंभीरता जानते हुए चुपचाप बाहर हो गई। बेटे के साथ जब डॉक्टर आया तो दादी-अम्मा के तीनों पोते भी वापस आ खड़े हुए। डॉक्टर ने सधे-सधाए हाथों से दादी की परीक्षा की। जाते-जाते दादी के बेटे से कहा, "कुछ ही घंटे और...।"

मेहराँ ने बहुओं को धीमे स्वर में आज्ञाएँ दीं और बेटों से बोली, "बारी-बारी से खा-पी लो, फिर पिता और दादा को भेज देना।"

अम्मा के पास से हटने की पिता और दादा की बारी नहीं आई उस रात। दादी ने बहुत जल्दी की। डूबते-डूबते हाथ-पाँवों से छटपटाकर एक बार आँखें खोलीं और बेटे और पति के आगे बाँहे फैला दीं। जैसे कहती हो-'मुझे तुम पकड़ रखो।'

दादी का श्वास उखड़ा, दादा का कंठ जकड़ा और बेटे ने माँ पर झुककर पुकारा, "अम्मा,...अम्मा।"

"सुन रही हूँ बेटा, तुम्हारी आवाज़ पहचानती हूँ।"

मेहराँ सास की ओर बढ़ी और ठंडे हो रहे पैरों को छूकर याचना-भरी दृष्टि से दादी-अम्मा को बिछुरती आँखों से देखने लगी। बहू को रोते देख अम्मा की आँखों में क्षण-भर को संतोष झलका, फिर वर्षों की लड़ाई-झगड़े का आभास उभरा। द्वार से लगी तीनों पोतों की बहुएँ खड़ी थीं। मेहराँ ने हाथ से संकेत किया। बारी-बारी दादी-अम्मा के निकट तीनों झुकीं। अम्मा की पुतलियों में जीवन-भर का मोह उतर गया। मेहराँ से उलझा कड़वापन ढीला हो गया। चाहा कि कुछ कहे....कुछ.... पर छूटते तन से दादी-अम्मा ओंठों पर कोई शब्द नहीं खींच पाई।

"अम्मा, बहुओं को आशीष देती जाओ....," मेहराँ के गीले कंठ में आग्रह था, विनय थी।

अम्मा ने आँखों के झिलमिलाते पर्दे में से अपने पूरे परिवार की ओर देखा-बेटा....बहू....पति....पोते-पतोहू...पोतियाँ। छोटी पतोहू की गुलाबी ओढ़नी जैसे दादी के तन-मन पर बिखर गई। उस ओढ़नी से लगे गोर-गोरे लाल-लाल बच्चे, हँसते-खेलते, भोली किलकारियाँ...।

दादी-अम्मा की धुँधली आँखों में से और सब मिट गया, सब पुँछ गया, केवल ढेर-से अगणित बच्चे खेलते रह गए...! उसके पोते, उसके बच्चे....।

पिता और पुत्र ने एक साथ देखा, अम्मा जैसे हल्के से हँसी, हल्के से....।

मेहराँ को लगा, अम्मा बिल्कुल वैसे हँस रही है जैसे पहली बार बड़े बेटे के जन्म पर वह उसे देखकर हँसी थी। समझ गई- बहुओं को आशीर्वाद मिल गया।

दादा ने अपने सिकुड़े हाथ में दादी का हाथ लेकर आँखों से लगाया और बच्चों की तरह बिलख-बिलखकर रो पड़े।

रात बीत जाने से पहले दादी-अम्मा बीत गई। अपने भरेपूरे परिवार के बीच वह अपने पति, बेटे और पोतों के हाथों में अंतिम बार घर से उठ गई।

दाह-संस्कार हुआ और दादी-अम्मा की पुरानी देह फूल हो गई। देखने-सुननेवाले बोले, "भाग्य हो तो ऐसा, फलता-फूलता परिवार।"

मेहराँ ने उदास-उदास मन से सबके लिए नहाने का सामान जुटाया। घर-बाहर धुलाया। नाते-रिश्तेदार पास-पड़ोसी अब तक लौट गए थे। मौत के बाद रूखी सहमी-सी दुपहर। अनचाहे मन से कुछ खा-पीकर घरवाले चुपचाप खाली हो बैठे। अम्मा चली गई, पर परिवार भरापूरा है। पोते थककर अपने-अपने कमरों मे जा लेटे। बहुएँ उठने से पहले सास की आज्ञा पाने को बैठी रहीं। दादी-अम्मा का बेटा निढाल होकर कमरे में जा लेटा। अम्मा की खाली कोठरी का ध्यान आते ही मन बह आया। कल तक अम्मा थी तो सही उस कोठी में। रुआँसी आँखें बरसकर झुक आईं तो सपने में देखा, नदी-किनारे घाट पर अम्मा खड़ी हैं अपनी चिता को जलते देख कहती है, 'जाओ बेटा, दिन ढलने को आया, अब घर लौट चलो, बहू राह देख रही होगी। जरा सँभलकर जाना। बहू से कहना, बेटियों को अच्छे ठिकाने लगाए।'

दृश्य बदला। अम्मा द्वार पर खड़ी है। झाँककर उसकी ओर देखती है, 'बेटा, अच्छी तरह कपड़ा ओढ़कर सोओ। हाँ बेटा, उठो तो! कोठरी में बापू को मिल आओ, यह विछोह उनसे न झेला जाएगा। बेटा, बापू को देखते रहना। तुम्हारे बापू ने मेरा हाथ पकड़ा था, उसे अंत तक निभाया, पर मैं ही छोड़ चली।'

बेटे ने हड़बड़ाकर आँखें खोलीं। कई क्षण द्वार की ओर देखते रह गए। अब कहाँ आएगी अम्मा इस देहरी पर...।

बिना आहट किए मेहराँ आई। रोशनी की। चेहरे पर अम्मा की याद नहीं, अम्मा का दुख था। पति को देखकर ज़रा सी रोई और बोली, "जाकर ससुरजी को तो देखो। पानी तक मुँह नहीं लगाया।"

पति खिड़की में से कहीं दूर देखते रहे। जैसे देखने के साथ कुछ सुन रहे हों- 'बेटा, बापू को देखते रहना, तुम्हारे बापू ने तो अंत तक संग निभाया, पर मैं ही छोड़ चली।'

"उठो।" मेहराँ कपड़ा खींचकर पति के पीछे हो ली। अम्मा की कोठरी में अँधेरा था। बापू उसी कोठरी के कोने में अपनी चारपाई पर बैठे थे। नज़र दादी-अम्मा की चारपाईवाली खाली जगह पर गड़ी थी। बेटे को आया जान हिले नहीं।

"बापू, उठो, चलकर बच्चों में बैठो, जी सँभलेगा।"

बापू ने सिर हिला दिया।

मेहराँ और बेटे की बात बापू को मानो सुनाई नहीं दी। पत्थर की तरह बिना हिले-डुले बैठे रहे। बहू-बेटा, बेटे की माँ.....खाली दीवारों पर अम्मा की तस्वीरें ऊपर-नीचे होती रहीं। द्वार पर अम्मा घूँघट निकाले खड़ी है। बापू को अंदर आते देख शरमाती है और बुआ की ओट हो जाती है। बुआ स्नेह से हँसती है। पीठ पर हाथ फेरकर कहती है, 'बहू, मेरे बेटे से कब तक शरमाओगी।?'

अम्मा बेटे को गोद में लिये दूध पिला रही हैं बापू घूम-फिरकर पास आ खड़े होते हैं। तेवर चढ़े। तीखे बालों को फीका बनाकर कहते हैं, 'मेरी देखरेख अब सब भूल गई हो। मेरे कपड़े कहाँ डाल दिए?' अम्मा बेटे के सिर को सहलाते-सहलाते मुस्कुराती है। फिर बापू की आँखों में भरपूर देखकर कहती है, 'अपने ही बेटे से प्यार का बँटवारा कर झुँझलाने लगे!'

बापू इस बार झुँझलाते नहीं, झिझकते हैं, फिर एकाएक दूध पीते बेटे को अम्मा से लेकर चूम लेते हैं। मुन्ने के पतले नर्म ओठों पर दूध की बूँद अब भी चमक रही है। बापू अँधेरे में अपनी आँखों पर हाथ फेरते हैं। हाथ गीले हो जाते हैं। उनके बेटे की माँ आज नहीं रही।

तीनों बेटे दबे-पाँवों जाकर दादा को झाँक आए। बहुएँ सास की आज्ञा पा अपने-अपने कमरों में जा लेटीं। बेटियों को सोता जान मेहराँ पति के पास आई तो सिर दबाते-दबाते प्यार से बोली, "अब हौसला करो"... लेकिन एकाएक किसी की गहरी सिसकी सुन चौंक पड़ी। पति पर झुककर बोली, "बापू की आवाज़ लगती है, देखो तो।"

बेटे ने जाकर बाहरवाला द्वार खोला, पीपल से लगी झुकी-सी छाया। बेटे ने कहना चाहा, 'बापू'! पर बैठे गले से आवाज़ निकली नहीं। हवा में पत्ते खड़खड़ाए, टहनियाँ हिलीं और बापू खड़े-खड़े सिसकते रहे।

"बापू!"

इस बार बापू के कानों में बड़े पोते की आवाज़ आई। सिर ऊँचा किया, तो तीनों बेटों के साथ देहरी पर झुकी मेहराँ दीख पड़ी। आँसुओं के गीले पूर में से धुंध बह गई। मेहराँ अब घर की बहू नहीं, घर की अम्मा लगती है। बड़े बेटे का हाथ पकड़कर बापू के निकट आई। झुककर गहरे स्नेह से बोली, "बापू, अपने इन बेटों की ओर देखो, यह सब अम्मा का ही तो प्रताप है। महीने-भर के बाद बड़ी बहू की झोली भरेगी, अम्मा का परिवार और फूले-फलेगा।"

बापू ने इस बार सिसकी नहीं भरी। आँसुओं को खुले बह जाने दिया। पेड़ के कड़े तने से हाथ उठाते-उठाते सोचा-दूर तक धरती में बैठी अगणित जड़ें अंदर-ही-अंदर इस बड़े पुराने पीपल को थामे हुए हैं। दादी-अम्मा इसे नित्य पानी दिया करती थी। आज वह भी धरती में समा गई है। उसके तन से ही तो बेटे-पोते का यह परिवार फैला है। पीपल की घनी छाँह की तरह यह और फैलेगा। बहू सच कहती है। यह सब अम्मा का ही प्रताप है। वह मरी नहीं।

वह तो अपनी देह पर के कपड़े बदल गई है, अब वह बहू में जीएगी, फिर बहू की बहू में...।

About The Author – Krishna Sobti

Krishna Sobti (18 February 1925 – 25 January 2019) born in Gujrat, Punjab and studied at Fateh Chand College, Lahore was an eminent Hindi Literature fiction writer and essayist. She won the prestegious Shahitya Akademi Award in 1980 for her novel Zindaginama and was awarded the Sahitya Akademi Fellowship, the highest award of the Akademi. In 2017, she received the Jnanpith Award for her contribution to Indian literature.

कृष्णा सोबती जिनका जन्म पाकिस्तान के गुजरात में हुआ, मुख्यतः हिन्दी की फिक्शन लेखिका थीं. उन्हें १९८० में साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा १९९६ में साहित्य अकादमी अध्येतावृत्ति से सम्मानित किया गया था. कृष्णा सोबती की लिखी हिंदी कहानियों में पंजाबी, उर्दू और राजस्थानी जबान साफ़ झलकती है. वो नयी लेखन शैली अपनाने के लिए जानी जाती थी.

Buy Krishna Sobti Books on Amazon

1. **Gujrat Pakistan Se Gujrat Hindustan – गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान**
2. **Mitro Marjaani – मित्रो मरजानी**
3. **Zindaginama – जिंदगीनामा**
4. **Marfat Dilli – मार्फ़त दिल्ली**
5. **Daar Se Bichhudi – दार से बिछुड़ी**
6. **Lekhak Ka Jantantra – लेखक का जनतंत्र**
7. **Dilo Danish – दिलो दानिश**